International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, RJIF (Impact Factor) 5.22
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue 1; January 2016; Page No. 15-16

दलित अस्मिताः शरण कुमार लिंबाले की साहित्यिक दृष्टि

लक्ष्मी प्रसाद कर्ष, डॉ. रमेश कुमार गोहे

शोध छात्र, हिन्दी–विभाग, गुरूघासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.) 495009

(सहायक प्राध्यापक), हिन्दी–विभाग, गुरूघासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.) 495009

प्रस्तावना

समाज, सामाजिक संबंधों का जाल है, जहॉ व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर होता है, चूंकि साहित्य समाज का दर्पण है, जो कि व्यक्ति की मनोदशा से प्रभावित होता है तथा व्यक्ति की मनः स्थितियॉ समाज और उसके परिवेश से प्रभावित होती हैं, इसीलिये किसी भी समाज की संवेदना उसके साहित्य में अभिव्यक्त होती है। भारत एक हिन्दुत्व प्रधान देश है, यहॉ समाज वर्ण–व्यवस्था पर आधारित है, वर्ण व्यवस्था से ही जाति की उत्पत्ति हुई, यही कारण है कि भारतीय समाज व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान का आधार नाम के साथ–साथ जाति भी है और इस जाति आधारित समाज व्यवस्था में चौथे वर्ण की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है, निम्न स्तर का होने के कारण सवर्ण समाज द्वारा उन्हें ''वर्णसंकर, शूद्र, अछूत आदि कहकर समाज के लिए आवश्यक नाना कर्मों में नियुक्त करके नाना प्रकार के प्रपंचों का जाल रच कर उनका मनमाना शोषण, दोहन, दलन और उत्पीड़न किया गया।''[1] उन पर घोर अत्याचार और यातनाऍ दी गई, उन्हें सारे अधिकारों से वंचित रखा गया, यहॉ तक कि गॉव से बाहर रहने को विवश किया गया। यही उनकी अस्मिता बन गई।

'अक्करमाशी' शरण कुमार लिंबाले की आत्मकथा ही नहीं बल्कि यह भारतीय समाज और संस्कृति की सबसे बड़ी विडम्बना है। संपूर्ण सच्चाईयों का पर्दाफाश करने वाली यह आत्मकथा सवालों की झड़ी लगा देती है और समाज के लोग अनुत्तरित रह जाते हैं। लेखक अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये नीग्रो के सम्मुख प्रश्न करता है ''मैं कौन हूँ?''[2] और इसके उत्तर में जो शब्द निर्मित होते हैं वह भी सवाल बनकर रह जाता है। ''मेरे पिता लिंगायत हैं। मेरी मॉ महार अर्थात दलित है।''[3] व्यक्ति अकेला कुछ नहीं होता, माता–पिता, सगे–संबंधी और सामाजिक संबंधों के साथ उसकी नैतिक–अनैतिक स्वीकृति ही उसकी अस्मिता और पहचान है। ऐसी स्थिति में वह कौन है? क्या है? अछूत या सवर्ण, मनुष्य या अमानुष। सवर्ण तो हो नहीं सकता, क्योंकि वह अछूत है, लेकिन अछूत होकर भी वह तिरस्कृत क्यों है? ऐसे ही अनेक सवालों का उद्‌गार करती यह आत्मकथा जाति–भेद, वर्ण–व्यवस्था, अस्पृश्यता, मानवीय संबंध, नैतिकता और मानवाधिकारों को परत–दर–परत उकेरती आगे बढ़ती है।

अपने कलंकित, दलित और मर्दित जीवन का बोझ लिये लेखक अपने जीवन को कुष्ठ रोग की भॉति छिपाये रखता है। लेखक का स्वकथन है –''कोढ़ी जैसे कोढ़ को छिपाकर रखता है, वैसे ही मैं भी अपने जीवन को छिपाकर रखूँ– ऐसी इच्छा होती है।''[4] किन्तु जब रोग का दर्द हद से गुजर जाता है, तो वह मवाद बनकर जरूर बहने लगता है। अक्करमाशी व्यक्ति की स्थिति भी ऐसी ही पीड़ाजनक बहाव है। यदि व्यक्ति निम्न स्तर की जाति में जन्म लेता है, तो उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है, उसे क्या–क्या संघर्ष झेलने पड़ते हैं? यह इस कथन से चरितार्थ होती है– ''मैं यहॉ जाति चुराकर रहता हूँ, दलितों को यहॉ किराए से जगह नहीं मिलती है। लोगों को यदि मेरी सही जाति मालूम हो गयी, तो मुझे जान से मार डालेंगे, मुझे यहॉ डर लगता है। आपके आने के बाद मेरी असलियत खुलने का डर लगता है।''[5] भारतीय समाजशास्त्रियों ने अस्पृश्यता को तीन मान्यताओं पर आधारित माना है– 1. खान–पान संबंधी, 2. विवाह संबंधी, 3. धार्मिकोत्सव संबंधी। अछूत के साथ भोजन करना तो दूर, उसके स्पर्श मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध मानते हैं। लिंबाले की कहानी 'युद्ध' में सवर्ण व्यक्ति देशमुख एक दलित पात्र भगवान से कहता है, ''देख बेटा मुझे कानून मत पढ़ाओ। आदमी को अपनी जात नहीं भूलनी चाहिए। अपनी हैसियत से रहना चाहिए। समझे? अजी पंत जी, संभल के आ जाइये, छूत लग जायेगी। इसे पहचाना नहीं आपने? यह अपने सदाशिव का बेटा है। फौजी है''[6]..... भगवान ने जब उनकी टूटी हुई प्याली में चाय पीने से मना कर दिया, तो उस पर छींटाकशी की गई ''महारों को भी मस्ती आ गयी है।''[7] भगवान इज्जत और सम्मान से जीना चाहता था, लेकिन उसे हर पल यही अहसास कराया जाता है कि वह अछूत है और अछूतों का एकमात्र धर्म उच्च वर्ण की सेवा करना है, इस व्यवस्था का विरोध करने पर उसके पूरे परिवार को ही समाप्त कर दिया गया।

दलितों को प्रताड़ित करने के लिये सवर्ण अनेक यत्न करते थे, कभी मरे हुए जानवरों को उठाने के लिये विवश किया जाता था, तो कभी उनके कुऍ में मृत पशुओं को डाल दिया जाता थां ऐसी व्यवस्था जाति, धर्म, वर्ण की दीवार को और मजबूत करती है। जातिवाद के जहर से अशिक्षित और गरीब तो पीड़ित हैं ही, शिक्षित और तथाकथित प्रगतिशील लोग भी इससे मुक्त नहीं हो पाए हैं। आधुनिक संभ्रान्त वर्ग बेटी–रोटी का संबंध एस. सी. या एस. टी. के अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति से बनाने को तैयार हैं।

लिंबाले ने अपनी कहानी 'अंधेरे का गर्भ' में ऐसे ही सवर्ण सरपंच को चित्रित किया है, जो अपने गृह की ग्रह बाधा शांति के लिये एक गर्भवती दलित स्त्री को जमीन में जिन्दा गाड़ देता है। मुखिया और सरपंच जैसे लोगों के माध्यम से समाज का दोगलापन दिखाया गया है, जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये अमानवीय कृत्य करने से भी परहेज नहीं करते। 'हरिजन मास्टर' (देवता आदमी) कहानी में भी सवर्ण समाज की ऐसी ही मानसिकता को लेखक ने उजागर किया है, जिसमें शिक्षा देने का पवित्र कार्य करने वाले दलित मास्टर के गॉव में आ जाने से लोगों में बेचैनी भर जाती है। गॉव वाले यह सोचकर बहुत परेशान होते हैं कि वह दलित मास्टर कहॉ रहेगा? वह किस प्रकार अपने बच्चों को उस मास्टर के पास पढ़ने के लिये भेजेंगे? उस मास्टर का गॉव में इतना अपमान होता है कि वह आने के साथ ही अपने जाने के बारे में सोचने लगता है। 'सीढ़ी' (दलित ब्राम्हण) की कहानी में भी दलित होने के कारण मास्टर को प्रताड़ित किया जाता है तथा प्रधानाध्यापक के द्वारा उस पर पैसे लेकर पास कराने का आरोप लगाया जाता है, गुस्से में वह मास्टर प्रधानाध्यापक की हत्या कर देता है।

'नाग पीछा कर रहे है' (छुआछूत) कहानी में दलित पात्र दौल्या अपनी पढ़ाई–लिखाई के कारण सामाजिक और राजनैतिक दांव–पेंच को जानने समझने लगता है, लेकिन जब इसी हक और अधिकार के कारण वह चुनाव में आरक्षित सीट पर अपना पर्चा दाखिल करता है,

तो पटेल उसे पैसे के बल पर खरीदना चाहता है, दौल्या के पिता को पटेल का यह व्यवहार गलत नहीं लगता, क्योंकि उसके खानदान की सत्रह पीढ़ियॉ उन्हीं की जूठन पर जीवन–यापन कर चुकी थीं। दौल्या को यह सब गलत लगता है। वह पटेल की बात नहीं मानता है। राजनीति का नशा पटेल पर इस तरह छाया था कि ''दौल्या जान बचाता खेतों, जंगलों से भाग रहा था और हम हाथों में लाठियॉ, कुल्हाड़ियॉ लिए उसका पीछा कर रहे थे। सभी लोग जोर–जोर से आवाजें लगा रहें थे। दौल्या बदहवास होकर जान बचाने के लिये भागा ही जा रहा था और हम वहशी बन गए थे। अंदाप्पा के कुऍं के पास दौल्या गिर पड़ा। ..... जब तक मैं दौल्या के पास पहुॅचता, तब तक उस पर कई घाव पड़ चुके थे। वह खून से सन गया था। उसका बदन तड़प रहा था। हाथ–पॉव कॉप रहे थे। अंततः दौल्या मर जाता है। गैर दलित समाज के कुछ लोग एक शिक्षित दलित को अपने अधीन बनाए रखना चाहते हैं। अधीनता स्वीकार न करने पर ये लोग उसके साथ बदसलूकी भी करते हैं।

इस प्रकार शरण कुमार लिंबाले ने अपनी कथा में शहर और गॉव दोनों को ही केन्द्र में रखा है। उन्होनें दलित समाज की स्थिति और उसकी समस्याओं को केन्द्र में रखकर लेखन कार्य किया है। उन्होंने दलितों के प्रतिरोधी स्वर को उभारा है, जहॉ दलित द्वारा पहले सिर्फ अपनी परिस्थिति को जस का तस स्वीकार करने की मजबूरी का चित्रण होता था, वहीं इससे थोड़ा आगे जाकर अपनी कथा में उस समाज व्यवस्था का विरोध करने की सामर्थ्य का चित्रण किया है। इनकी कथा में कहीं न कहीं प्रतिरोधी स्वर के साथ–साथ दलितों में आक्रोश की भावना भी मुखरित दिखाई दे रहा है। भले ही उनकी गति धीमी है, पर इनमें भी अपने अधिकार को लेकर सोचने समझने की शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा है यह सब धीरे–धीरे शिक्षित होने की प्रक्रिया का परिणाम है। निष्कर्षतः यह कहने में कोई अतिश्योक्ति न होगी कि लिंबाले ने अपनी कथा में दलित अस्मिता पर प्रकाश डालने का भरसक प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बद्रीनारायण–दलित वैचारिकी की दिशाऍं, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2008, पृष्ठ–75
2. शरण कुमार लिंबाले–अक्करमाशी, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2009, पृष्ठ–24
3. वही, पृष्ठ–17
4. वही, पृष्ठ–22
5. शरण कुमार लिंबाले–झुण्ड, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2012, पृष्ठ–30
6. शरण कुमार लिंबाले–दलित ब्राम्हण, तृतीय संस्करण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2008, पृष्ठ–98
7. वही, पृष्ठ–99
8. शरण कुमार लिंबाले–छुआछूत, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2008, पृष्ठ–27